Chapter-8

अ ष्ट म - अ ध्या य

भक्ति एवं दर्शन

"गोस्वामी हरिराय जी जिस जीवन को जी रहे थे, उसकी कुछ निश्चित प्राचीरें थीं, जो उनके साहित्यकार को एक मान्य-सीमा में ही परिभ्रमण करने के लिए बाध्य किये हुए थीं। इस अवरोध को उन्होंने अपनी गति के लिए बेड़ियाँ न मानकर भटकाव के बचाव का कारण ही माना है। - - उनका एक मात्र उद्देश्य पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों को जन-सामान्य के लिए सुलभ बनाना था।"

पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों का विवेचन जिस कुशलता से गोस्वामी हरिराय जी ने किया है, वह अपने में अप्रतिम ही है। उन्होंने अपने साहित्य की सरस प्रवाहिनी में शुद्धाद्वैत संबंधी मान्यताओं के निश्चित कगारों का निर्बंधन कर जहाँ एक ओर अपने मूल-ध्येय को प्रोद्-भाषित किया है, वहाँ दूसरी ओर उनकी भक्ति-वैतरिणी उस वैष्णव समाज का आव्हान भी करती है, जो अपने अभीष्ट के सामीप्य का जिज्ञासु है।

गोस्वामी हरिराय जी ने संस्कृत में 'मार्ग स्वरूप सिद्धान्त', 'स्वमार्गीय कर्त्तव्य निरूपण', 'स्वमार्गीय साधन रहस्य', 'भक्ति मार्ग', 'पुष्टिमार्गत्व निश्चय', 'पुष्टिमार्गीय स्वरूप निरूपण' आदि ग्रन्थ अपने भक्ति-सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिये ही लिखे थे। ब्रजभाषा में भी 'भावना ग्रन्थ' तथा 'पुष्टि-दृढ़ाव की वार्ता', 'मार्गशिक्षा', 'वैष्णवन के नित्य कृत्य,' 'द्विदलात्मक स्वरूप विचार' आदि ग्रन्थ मूल रूप में पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों को ही अधिक स्पष्ट करते हैं। उनका अधिकांश साहित्य एक पूर्व योजित दार्शनिक-सत्य के उद्बोधन स्वरूप ही गठित हुआ है। 'साहित्य का उद्देश्य मनुष्य को सत् की ओर प्रवृत्त करना बतलाया गया है। प्लेटो ने इसको उपदेशात्मक मानकर समालोचना में आदर्शवादिता का समावेश किया, वह लौकिक सत्य को अलौकिक सत्य की छाया मानता है और उसी कला को उत्कृष्ट मानता था जो

नैतिक और दार्शनिक सत्य पर आधारित हों।१ नैतिक और दार्शनिक सत्य को साहित्यकार अपनी बोध-तुला पर तौल कर अन्य के लिये अनन्य रूप में प्रेषित करता रहा है। गोस्वामी हरिराय जी जिस जीवन को जी रहे थे, उसकी कुछ निश्चित प्राचीरें थीं, जो उनके साहित्यकार को एक मान्य सीमा में ही परिभ्रमण करने के लिये बाध्य किये हुए थीं। इस अवरोध को उन्होंने अपनी गति के लिये बेड़ियाँ न मान कर, भटकाव से बचाव का कारण ही माना। यही कारण है, कि कृष्ण-लीला के बखान में ही उनकी सम्पूर्ण प्रतिभा के दर्शन हो जाते हैं। अपनी सैद्धान्तिक मान्यताओं को दृढ़ बनाने के लिये ही उन्होंने अपनी सशक्त वाणी का साहचर्य ग्रहण किया और अपने निश्चित उद्देश्यों की व्याख्या कर डाली। उनका एक मात्र उद्देश्य पुष्टि-मार्गीय मान्यताओं को जन-सामान्य के लिये सुलभ बनाना था।

पुष्टि-मार्ग का दार्शनिक-सिद्धान्त ज्ञान तथा भक्ति के युगल स्कंधों पर आरूढ़ है। ज्ञान के माध्यम से जहाँ भक्त के बोध-चक्षु अपने आराध्य को एक निश्चित स्वरूप में देखते हैं, वहाँ भक्ति के माध्यम से वह अपनी पावन, पूज्य तथा श्रद्धापूर्ण भावनाओं को अपने आराध्य के चरणों में समर्पित करने की व्यवस्था को भी ग्रहण करता है।

पुष्टि-मार्ग के दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना अनेक मनीषी विद्वानों द्वारा की जा चुकी है, अत: इस सिद्धान्त का स्वरूप अब हिन्दी साहित्य के अध्येता के लिये अपरिचित नहीं है। इन सिद्धान्तों की यहाँ चर्चा करना मात्र पिष्टपेषण ही होगा, इसलिए पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों की विवेचना मूल रूप में यहाँ न करके, गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य में प्रतिबिम्बित संकेतों द्वारा ही करेंगे।

ज्ञान एवं भक्ति के प्रतिपादन में गोस्वामी हरिराय जी ने भक्ति को अधिक महत्ता प्रदान की है। ज्ञान-पक्ष का उन्होंने

अपने संस्कृत ग्रन्थों में स्पष्टीकरण किया है। यहाँ उनके ब्रजभाषा साहित्य में समाविष्ट भक्ति-सिद्धान्तों का विवेचन करना ही अभिप्रेत है।

भावमयी भगवत्परिचयात्मक सेवा को भक्ति कहा जाता है। इस प्रकार की भक्ति का प्रारम्भ 'विष्णुस्वामी' से माना गया है। इसका समय विक्रम की पाँचवीं शताब्दी अनुमानत: ज्ञात होती है।

-:: भक्ति-सिद्धान्त ::- सम्राट् अशोक के समय बौद्ध-मत का बोल-बाला रहा था। इस समय विष्णुस्वामी मतानुयायी सिद्धान्त शिथिल पड़ चुके थे। आचार्य शंकर ने बौद्धमत के मायावाद का तर्क-सम्मत खण्डन कर भारतीय दर्शन के इतिहास में पुन: वैदिक-मत की प्रतिष्ठा की। इस सन्दर्भ में शंकराचार्य ने बौद्धमत के खण्डन हेतु वेद-वाक्यों का अपने विवेकानुसार अन्यथा अर्थ ग्रहण किया था। दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक भक्ति मार्ग के प्रतिपादक अनेक आचार्यों ने अपने-अपने भक्ति-सिद्धान्तों का प्रचार किया। उन्होंने साकार-भक्तिमार्ग के समर्थन में अनेक प्रकार के सिद्धान्तों द्वारा वैदिक-मतों की स्थापनाएँ कीं। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में वल्लभाचार्य ने भक्ति-समर्थक सभी सिद्धान्तों का अध्ययन कर प्राचीन शोध करके विष्णुस्वामी के मत को ही अधिक उपयुक्त समझा। अपनी विलक्षण बुद्धि से इस मत को उन्होंने पूर्ण पुष्ट किया। कालान्तर में यही मत 'वल्लभ-मत' के नाम से जाना गया।१। गोस्वामी हरिराय जी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है :-

'विष्णुस्वामी पथ प्रगट अचल करि पुष्टि-मर्यादा चलाई हो।२

इसी सन्दर्भ में गोस्वामी हरिराय जी ने अपने पूर्वजों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त का स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया है :-

---

(१) देखिये-- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता- सम्पा० श्री द्वारकादास परिख, (भाग-३) - प्रस्तावना, पृष्ठ- २३।

(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य-प्रकाशित, पद संख्या- ६०४।

'सो श्री आचार्य जी के मारग को कहा स्वरूप है ? जो-माहात्म्य ज्ञान पूर्वक दृढ़ स्नेह सो सर्वोपरि है । सो ठाकुर जी कों बहोत प्रिय है । परन्तु जीव माहात्म्य राखैं । सो काहे तें ? जो-माहात्म्य बिना अपराध को भय मिट जाय । तासों प्रथम दसा में माहात्म्ययुक्त स्नेह आवश्यक चाहिये । और ब्रज भक्तन को स्नेह है सो सर्वोपरि है । तासों भक्तन के स्नेह आगे ठाकुर जी कों माहात्म्य रहत नाहीं । सो श्री ठाकुर जी स्नेह के बस होय भक्तन के पाछे-पाछे डोलत हैं । - - - - - सो ऐसो स्नेह प्रभु कृपा करि दान करैं ताकों आप ही तें माहात्म्य छुटि जायगो । और जाको स्नेह पति,पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब तथा द्रव्य में है । और अपने देह सुख में है । सो भगवान् को माहात्म्य छोड़ लौकिक रीति करैं सो भगवान कों अपराधी होय । तासों वेदमर्यादा सहित श्री ठाकुर जी के भय सहित सेवा करे और सावधान रहे । - - - - - सो महात्म्य पूर्वक स्नेह यह जो समय-समय ऋतु अनुसार सेवा में सावधान रहे'।१

-०:: माहात्म्य ::०-

आराध्य के प्रति दृढ़ स्नेह रखकर उसके माहात्म्य का निरंतर मनन करते रहना चाहिये । इसमें - लौकिक संबंधों के लिए कोई स्थान नहीं रहता । वेद-मर्यादा के अनुसार चलकर आराध्य की सेवा करनी चाहिए । भक्ति के इस पथ में भगवान के माहात्म्य को सर्वोपरि स्वीकार किया गया है ।

नवधा-भक्ति :-

भक्ति के इस पावन माध्यम में गोस्वामी हरिराय जी ने नवधा-भक्ति की सभी स्थितियों में रतहोकर अपने इष्ट को तुष्ट करने की चेष्टा की है । उनके काव्य में नवधा-भक्ति की सभी स्थितियों को व्यक्त किया

---

(१) सूरदास की वार्ता-- गो० हरिराय जी । सम्पा० श्रीप्रभुदयाल मीतल, - अग्रवाल प्रेस,मथुरा, -- पृष्ठ- २२ ।

गया है । पुष्टि-मार्ग में नवधा-भक्ति से सम्पन्न 'माहात्म्य-ज्ञान युक्त प्रेम लक्षणा भक्ति' को अपनाया गया है । इसमें आराध्य के प्रति प्रेमासक्ति को अधिक महत्व दिया गया है । यह आसक्ति अपने में अनन्य है । इसके वृत्त में 'नवधा' के सभी प्रकार सन्निहित हैं । प्रेमाभक्ति में 'रसोवैस:' के अनुसार आराध्य के पूर्ण रसात्मक स्वरूप को ग्रहण किया गया है ।१ इस मार्ग में श्रवण[२], कीर्तन[३], स्मरण[४], पादसेवन[५], अर्चन[६], बंदन[७], दास्य[८], सख्य[९] और आत्म निवेदन[१०] के सभी विधान निहित हैं । गोस्वामी हरिराय जी ने इन सभी नवधा रूपों को स्वीकारते हुए प्रेमा-भक्ति को ही अधिक महत्व दिया है ।

प्रेमाभक्ति :-

'अर्थ, धर्म, अरु काम मोक्षफल प्रेम-भक्ति को कनक कस'।११ इसमें प्रेम-भक्ति के 'कनक' को 'कसने' के लिए 'अर्थ, धर्म, अरु काम मोक्ष' को स्वीकारा गया है । अपने गद्य ग्रन्थों में भी गोस्वामी हरिराय जी ने इस मत को स्वीकार किया है ।--

---

(१) 'रसोवैस: इति श्रुत्या- कृष्णो भावात्मको मत: ।
-- मार्ग स्वरूप निर्णय, गो० हरिराय जी ।

(२) सुमिरन भजन करौ केसव कौ, जब तक यैह नहीं गरत गातरी ।
-- गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६६८ ।

(३) नाथ - रसिक सिरोमनि श्री वल्लभ सुत, जनम जनम जस गाई हौ- वही, प०६०४

(४) नाथ हा, हा, मोहि दीजे दरस- वही, पद - ६५१ ।

(५) मेरी मति राधिका चरन रज में रहौ, वही , पद - ६५६ ।

(६) मंगल की आरती उतारी । वही , पद - ५१३ ।

(७) तुमसौ नाथ पुकारत हारयौ । वही, पद - ६४६ ।

(८) अहो हरि दीन के जु दयाल । वही, पद - ६५४ ।

(९) अहो कान्ह ! गैया कित विहरानी । वही, पद - ६८ ।

(१०) दुर्बल सौ जीव एक, ताके शत्रु अनेक । वही, पद - ६५५ ।

(११) वही, पद संख्या- ६४४ ।

'श्री आचार्य जी के मार्ग में दशधा प्रेम-लक्षणा भक्ति अधिक है'। १

आराध्य के इस प्रेम में निमग्न भक्त के लिए न तो कोई बन्धन है, न मर्यादा :-

मन में आवत ऐसी सुत पति गृह तजि ।
भजिये री प्रीतम कौं नचिये री उघरि ।। २

सभी को त्याग कर प्रीतम को भजने के लिए भक्त को किसी भी निश्चित प्राचीर में बंदी नहीं बनाया जा सकता । अपने मत को और भी स्पष्ट करने के लिए गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा है :-

'सर्ग आदि लीला में दस विधि, जाकौं निरोध है नाम ।
प्रेमासक्ति व्यसन त्रिविध फल, त्रिविध लीला अभिराम ।
पुष्टि प्रवाह मरजादा मारग, तिनहिं दिखायौ भेद ।
दैवी जीव कृपा साधन बल, सब प्रमान हैं वेद ।।३

गोस्वामी हरिराय जी ने इस 'प्रेमासक्ति' जन्य भक्ति के लिए साकार-कृष्ण को अपना आराध्य स्वीकार किया है :-

साकार :-

कृष्ण का स्वरूप भक्तों के मन को मोहने वाला पूर्ण सौन्दर्य से सम्पन्न है ।--

'मोर मुकुट गुंजामनी, कुण्डल तिलक सुभाल ।
पीताँबर छुद्र घंटिका, उर बैजंती माल ।
कर लकुटी मुरली गहें, घूँघर वारे केश ।
वह मेरे नैंनन बसौ, स्याम मनोहर वेश ।।४

---

(१) २५२ वैष्णवन की वार्ता , भाग-१, सम्पा० श्री द्वा०दा० परिख, पृ०-२४ ।
(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १८६ ।
(३) वही, पद सं० ५८६ । (४) सनेह लीला ।

गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण के साकार स्वरूप को अन्य स्थलों पर भी स्वीकारा है :-

-- श्री हरिबदन जो प्रगट न होते, तो बूड़त वेद जहाज ।।१
-- यह स्वरूप रसरूप सदा, मन वसौ विरह रसखानि ।।२

उनके आराध्य का स्वरूप पूर्ण रसत्व से व्याप्त है । इस रस में निमग्न भक्त का हृदय स्वरूपात्मक-सेवा से किंचित भी विलग नहीं रह सकता ।३

लीला :-
---- यह लीला तुम कारने, गोप मेष अवतार ।
निर्गुन ते सगुन भये, तुमसौं करत विहार ।।४

भगवान स्वयं लीलामय हैं, और उनकी समस्त लीला अपने भक्त वैष्णवों के लिये ही है, इसीसे उन्होंने निराकार होते हुए भी सगुण रूप को स्वीकार किया है । माया के गुण धर्म उनमें न होने से वे निराकार वा निर्गुण कहे जाते हैं तथा आनन्द के दिव्य एवं अप्राकृत गुणों के कारण वे सगुण एवं साकार भी कहे जाते हैं । पुष्टि-मार्ग में कृष्ण के इसी साकार स्वरूप को स्वीकार किया गया है ।

भगवान कृष्ण अपनी लीलाओं से अपने भक्तों को प्रसन्न करते रहते हैं । उनकी ये लीलायें पूर्ण रस-मग्ना हैं । उनकी सभी लीलाओं को प्रकट करने का मुख्य कारण उनके भक्त ही हैं ।-

ब्रज जन की रति मूरति, दई है दिखाई, लीला सब प्रगट करी,
सेवकन बताई ।।५

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १९५ ।
(२) वही, पद संख्या- १४३ ।
(३) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता,(भाग-३), पृष्ठ- ३५० ।
(४) सनेह लीला ! (५) गो० हरिराय जी का पद सा०,प्र०, पद-५२७ ।

-- बत्तीस लक्षा जीव की गिनती, लीला रस ते भक्ति प्रतीती ।।१
-- तब कही बर दैन जो चाहौ, लीला अनुभव सुख गहौ ।।२

कृष्ण की लीलाएँ अनन्त हैं, अकथ हैं, फिर भी गुरु कृपा से ही उनकी लीलाओं का अनुभव किया जा सकता है :-

कापै कही जाय यह लीला, गुपत, न काहू जानी ।
कछु इक श्री वल्लभ करुना बल रसिक विचार बखानी ।।३

गोस्वामी हरिराय जी ने इसे अपने गद्य-ग्रन्थ में इस प्रकार स्पष्ट किया है :-

'श्री जी (श्रीकृष्ण) की लीला अति बड़ी अरु महा आनन्द रूप है । तैसौ आनन्द रूप हृदय में राखनौ तौ महालीला कौ सुख देखिये । सौ देखिये दोष उपजै तौ महा पतित होय । और जो स्नेह उपजै तौ श्री ठाकुर जी अपने रसात्मक स्वरूप कौ दर्शन देहि अरु दास करि राखैं'।४

गो० हरिराय जी के अनुसार कृष्ण की यह लीला अत्यन्त अलौकिक है । तर्कागोचर है ।५ यह केवल भावात्मक है और शुद्ध हृदय से ही इसका अनुभव किया जा सकता है ।

भाव-प्रधान :- ' भाव रूप कौं भाव रूप ही भजन पंथ जत-यौं '।६

लौकिक वातावरण से सर्वथा इतर पारलौकिक स्थिति में पहुँच कर ही इसके

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५२३ ।
(२) वही, पद संख्या- ५२१ ।
(३) वही, पद संख्या- १४४ ।
(४) पुष्टि दृढ़ाव, गो० हरिराय जी, प्रका० मथुरा, पृष्ठ- ५ ।
(५) श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता, प्रका०, नाथद्वारा, पृष्ठ- ३९ ।
(६) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५३४ ।

स्वरूप का अनुभव किया जा सकता है ।--

-- सपने ही संगम नित जाकौ, जागत गति छिन की ।।१

भाव की महत्ता प्रतिपादित करते हुए वे लिखते हैं, 'भाव बिना क्रिया करिए सो वृथा श्रम जाननौ । यह मार्ग अरु मार्ग की क्रिया श्री मत्प्रभु कौ शरण संबंध दृढ़ राखि ब्रज भक्तन के भाव सौं सेवा करैं । तब फल रूप होय । अरु अलौकिक लीला अनुभव बेगि ही दान करैं प्रभु । यामैं संदेह नाँही'।२ अन्यत्र गोस्वामी हरिराय जी ने मर्यादा-मार्ग और पुष्टि-मार्ग मैं अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है,'पुष्टि-मार्ग मैं भावना ते स्वरूप पधारे । मर्यादा-मार्ग मैं वेद मंत्र के आवाहन ते ।'३ इस मार्ग मैं भाव को मुख्य रूप से ग्रहण किया गया है, गो० हरिराय जी के अनुसार इस मार्ग मैं भाव ही सर्व प्रमुख है ।४

भक्ति मैं भाव का सम्बन्ध हृदय की आन्तरिक अनुभूतियों से है, जो कल्पना के रथ पर चढ़कर अपने लक्ष्य का अवलोकन करता है । भावों के प्रबल उद्वेग मैं ही भक्त अपने भगवान् का साक्षात्कार करता है ।

गोपी भाव :- गोस्वामी हरिराय जी ने आराध्य का नैकट्य प्राप्त करने के लिये अन्य सम्बन्धों की अपेक्षा प्रिय-प्रिया के सम्बन्ध को ही अधिक उपयुक्त समझा था । इसी सम्बन्ध मैं अपने प्रभु को वश मैं करने के लिये वे स्वयं स्त्रीत्व का अनुभव करने लगते हैं । पुष्टि-मार्ग मैं सखी भाव से ही कृष्ण की आराधना का प्रचलन रहा है :-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ३६८ ।

(२) उत्सव भावना, गो० हरिराय जी, प्रकाशित, पृष्ठ- ८६ ।

(३) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-१) पृष्ठ- ४६ ।

(४) वही, पृष्ठ- ४३७ ।

'पुष्टि-मार्ग में जितनी क्रियाएं हैं, सो सब श्री स्वामिनी जी के भाव ते हैं।'१

स्वामिनी अर्थात् श्री राधा कृष्ण की अर्धांगिनी हैं। इसलिए कृष्ण से साक्षात् निवेदन करने से अच्छा यही है कि राधा के माध्यम से अनुनय की जाय। राधा से विनय करते समय गोपिकाओं की भावनाओं से मंडित होना भी आवश्यक है। इसलिए इस मार्ग में गोपीभाव को प्रावान्य दिया गया है। गोपिकाएं कृष्ण के ऊपर तन-मन से आसक्त हैं। वे कृष्ण की परकीया प्रेमिकाएं भी हैं। स्वकीया प्रेम की अपेक्षा परकीया प्रेम में घनिष्टता एवं तल्लीनता की अधिक लौ रहती है। अत: पुष्टि-मार्ग के आचार्यों ने गोपी-भाव को अपनी भक्ति के प्रतिपादित करने का माध्यम चुना।--

'तब सबरी गोपी श्री स्वामिनी जी सौं प्रार्थना करी जो हम अनेक उपाय करिकैं हारी परन्तु काहू कौं रस की प्राप्ति न भई। ताते हम तुम्हारी शरण हैं। हमकौं कृपा करिकैं स्वरूपानन्द को अनुभव करावौ।'२ क्यौं कि 'स्त्रीभाव को दान स्वामिनी जी के हाथ है।'३ इसलिए स्वामिनी जी की भी आराधना स्वार्थवश की गई। यह स्त्री-भाव लौकिक स्थितियों से सर्वथा परे है, 'अलौकिक स्त्रीभाव बिना पुरुष देह ते ब्रज भक्तन सहित दरसन न होइ।'४ स्त्री-भाव में भी गोपांगनाओं को महत्व देकर कृष्ण का अधिक सानिध्य प्राप्त करने का यत्न किया गया है। --

उद्धव तुम जानत सबै, परम भजन की रीति।
गोपिन सौं संबंध करि उपजी प्रेम प्रतीति।
कृष्ण भक्त मोहि जानिये, जाके अन्तर प्रेम।
राखैं अपने इष्ट सौं, गोपिन को सो नेम।।५

---

(१) श्री स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना, (प्रकाशित), पृष्ठ- ११
(२) वही, पृष्ठ- २३।
(३) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-१) पृ० ३३।
(४) वही। (५) सनेह लीला।

गोस्वामी हरिराय जी के अनुसार इस भूतल पर यदि संत हैं या हुए हैं,तो वे सभी व्रज की नारियाँ ही हैं :-

संत भये भूतल निर्षै, वे सब व्रज की नारि ।
चरण शरण गहि के रही मिथ्या जोग विचारि ।।१

इस अनन्त शक्ति सम्पन्न परब्रह्म कृष्ण का न आदि है और न अन्त ही :-

-- निगम जाहि खोजत रहे, आगम अगम न अंत ।२
-- जोगेश्वर पावै नहीं सिद्ध समाधि लगाय ।।३
-- ललित बचन समुझत भए नेति नेति से बैन ।४

अनन्त शक्ति सम्पन्न होने पर तथा "नेति नेति" के इस स्वरूप को यदि वश में किया है,तो गोपिकाओं ने ही :-

-- जोगेश्वर पावैं नहीं, सिद्ध समाधि लगाय ।
सो व्रजवासी संग मैं गोकुल चारत गाय ।।५

जिस प्रकार कृष्ण की महिमा का पार नहीं, उसी प्रकार गोपिकाओं के प्रेम की भी कोई सीमा नहीं है :-

--अरू गोपिन के प्रेम की महिमा कछू अनन्त ।६

इन गोपिकाओं के द्वारा ही पूर्ण प्रेम को व्यक्त किया गया है, अन्यथा सभी का प्रेम अपूर्ण है :-

---

(१) सनेह लीला, गोस्वामी हरिराय जी कृत ।
(२) वही ।
(३) वही ।
(४) दान लीला, गोस्वामी हरिराय जी कृत ।
(५) सनेह लीला ।
(६) वही ।

--गोपीजन हरषत उर आनन्द पूरन प्रीत जनाई हो ।१
--व्रज सुन्दरी भाव रस पूरित, आनन्द निधि को अंग।२
--गोपीजन मन मान्यौं करिकै, सजि आरति उतरावैं ।३
--प्रेम विवस व्है, हरि दरसन कौं तन सुधि जिन्ह विसराई।४
'रसिक प्रीतम' करुना ते तिनहू गोपिन की गति पाई ।।

गोस्वामी हरिराय जी ने सम्प्रदाय में प्रचलित मान्यता के अनुसार गोपीभाव की तरह ब्रजजन-भाव को भी महत्ता दी है, किन्तु यह महत्व गोपीकाओं के महत्व के पश्चात् की श्रेणी में है ।

व्रजजन-भाव :- कृष्ण गोपांगनाओं की भाँति अपने इष्ट-मित्र ग्वालों में भी अनन्य भाव रखते हैं । जहाँ गोपी-भाव में प्रेम निगूह व्यंजना अन्तर्हित है, वहाँ 'ब्रजजन-भाव' में प्रेम की स्वच्छन्दता का आभास होता है । गोस्वामी हरिराय जी ने इसे स्पष्ट करते हुये लिखा है :-

---जोगेश्वर पावैं नहीं, सिद्ध समाधि लगाय,
सो व्रजवासी संग मैं गोकुल चारत गाय ।५
---व्रजवासी वल्लभ सदा मेरे जीवन प्रान ,
ताते निमिस न वीसरौं, नन्द बवा की आन।६
---व्रजजन की रति मूरति दई है दिखाही ।७

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ६०४ ।
(२) वही, पद सं० ५८९ ।
(३) वही, पद सं० ५११ ।
(४) वही, पद सं० ३३८ ।
(५) वही, पद सं० २९ ।
(६) सनेह लीला ।
(७) वही ।

गोस्वामी हरिराय जी ने अन्यत्र कहा है, `` सो तो (भगवान) ब्रज भक्तन कौं जनावत हैं जो हमारो प्राकट्य केवल तुम्हारे अनुराग ते भयो है ``।१ इस ब्रजजन की परिधि में कृष्ण की अनन्य प्रेमिका, गोपिकाएं भी आ जाती हैं, फिर भी पुष्टि-मार्ग के आचार्यों ने गोपी-प्रेम-भाव को अधिक गहन मान कर उसे ही अधिक महत्व दिया है। गोपीभाव में प्रणय को सामीप्य प्राप्त करने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम माना गया है इसी कारण इस सम्प्रदाय में भक्ति का रूप भी प्रेमासक्त भक्ति ही है।

आराध्य-स्वरूप :-

आराधना के इस भाव-जगत में पुष्टि-मार्गीय आचार्यों ने कृष्ण को ही `प्रमुख` माना है। इस सम्प्रदाय के मुख्य देव श्रीनाथ जी हैं, जो कृष्ण के ही एक स्वरूप हैं। कृष्ण के स्वरूप स्थापन में इन्होंने सर्व प्रथम कृष्ण के बाल-रूप का ही `सेवा` में प्राधान्य माना है। ध्यान के क्षेत्र में इन्होंने `गोपीजन वल्लभ` के किशोर-भाव का चिंतन किया है। इस प्रकार द्विविध भाव रूप बाल एवं किशोर की सेवा का निरूपण किया गया है। गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य में भी इन दोनों रूपों को परम्परावत् स्वीकार किया गया है। बाल रूप को सेवा में प्रमुख स्थान देने के लिए इन्होंने कृष्ण की बाल-लीलाओं को सेवा विधि के अनुसार ही चित्रित किया है इसमें नित्य-सेवा तथा वर्षोत्सव सेवा के अनुरूप कृष्ण के बाल चरित्र को चित्रित किया है। स्थान-स्थान पर गोस्वामी हरिराय जी ने `बाल-भाव` को पृथक् रूप से महत्ता देकर भी व्यक्त किया है, :-

-- रसिक पावै कौन हरि को बाल-लीला भाव ।२
-- अचरज `रसिक` बाल-लीला में लीला और करैं ।३

---

(१) उत्सव भावना (प्रकाशित) - पृष्ठ- ६३ ।
(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं०- २३ ।
(३) वही, पद सं० २० ।

गद्य-ग्रन्थ में भी इन्होंने कहा है 'सो मुग्ध बालक की तरह श्री ठाकुर जी को जानि सेवा करनी'।१ गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण के इस बाल-स्वरूप को सौन्दर्य की मूर्ति मानकर व्यक्त किया है, इस रूप में इनके कृष्ण का एक चित्र द्रष्टव्य है :-

बहुरि कब देखौं नन्द कुमार ।
लकुटि लिए धावत ब्रज बीथिन, बालक अति सुकुमार ।
बिथुरी अलक, लटन, लटकत सिर, राजत मुक्ता हार ।
कंठ बघनखा कर पहौंची सोहन बाजूबन्द सुचार ।
बैंनी गुही जसोदा सुंदर, सोभा देति अपार ।
'रसिक प्रीतम' की यह बानिक कब है है मन सिंगार ।।२

बाल-लीला वर्णन में कवि ने अधिकांश वर्णन, पुष्टि-मार्गीय सेवानुरूप अष्ट झांकियों के अनुसार ही किए हैं । इसमें मंगला, ग्वाल, श्रृंगार, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या, आरती एवं शयन की आठों झांकियों में ही कृष्ण का सम्पूर्ण बाल-चरित्र रच डाला है । कुछ झांकियों में कृष्ण का कैशोर रूप भी दर्शित हुआ है ।

रसात्मक-मार्ग :-

मानसी चिन्तन के क्षेत्र में अपने पूर्वज आचार्यों की भाँति इन्होंने भी कृष्ण के किशोर रूप को ही स्वीकार किया है । कृष्ण की किशोरावस्था की लीलाओं के चित्रण में इनका हृदय अधिक रमा है, यह विगत अध्ययन से जाना जा सकता है । इसका प्रमुख कारण कृष्ण के रसात्मक स्वरूप को ही अधिक प्रदर्शित करना रहा है। कृष्ण का बाल-चरित्र कुछ कम रस युक्त नहीं, किन्तु पुष्टि-मार्गीय सिद्धांत में सेवक की भावनाओं में 'स्त्रीत्व-भाव' सन्निहित होने के कारण उनकी वृत्ति

(१) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, सम्पा० द्वारकादास परिख, भाग-१ -- पृ० ८६ ।
(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ३०६ ।

की ललक कृष्ण के कैशोर स्वरूप को ही अधिक ग्राह्य कर सकी है। इस मार्ग का स्वरूप ही पूर्ण रसात्मक है। "महारसात्मक जो मार्ग ताको नाम पुष्टि मार्ग "१ गोपीभाव में भी इन्होंने संयोग की अपेक्षा विरह को अधिक महत्व दिया है। विरह में भावोद्वेग के कारण प्रियतमा का मन सदैव प्रिय के लिए आतुर रहता है। वस्तुत: विरह की 'पीर' में जो एकात्म भाव निहित है, वह संयोग के क्षणिक आनन्द में नहीं। गो० हरिराय जी ने विरह को विशेष महत्व दिया है, यही कारण है कि शृंगार वर्णन में उनका विरह प्रसंग अधिक मुखर प्रवीत होता है। विरह वर्णन में अनुभूतियाँ अति तीक्ष्ण है, यह भावोद्वेग का ही परिणाम कहा जा सकता है।

विरह :-

गोस्वामी हरिराय जी के शब्दों में 'पुष्टि-मार्ग की सेवा विरह आतुरता की है। विरह आतुरता बिना अनुभव न होइ। विरह आतुरता सों लोक, बेद के धर्म विस्मृत होत हैं। हृदय में प्रभु को आवेश होत है'।२ संयोग में इच्छाएं पूर्ण हो जाने से कुण्ठाएं भी स्खलित हो जाती हैं। इसलिए गोपीभाव में निमग्न इन आचार्यों ने विरह अवस्था को अधिक महत्व दिया, जिससे आवेश में प्रिय का स्मरण निरंतर बना रहे।

माधुर्य-भाव की उपासना को इस सम्प्रदाय में आधार माना है। यह भक्ति माधुर्यभाव युक्ति, होने से रागानुगा है। वैधी नहीं। प्रेम में व्यवधान न रहने से पूर्ण तन्मयता की स्थिति उपस्थित हो जाती है। इन्हीं क्षणों में भक्त अपने भगवान का सामीप्य प्राप्त कर उस अलौकिक आनंद का अनुभव करता है, जो उसे इस लौकिक वातावरण में सर्वथा अ-प्राप्त रहा है। अपने प्रियतम को तुष्ट

---

(१) पुष्टि - दृढ़ाव- पृष्ठ- ३५।
(२) दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता- (भाग-२) पृष्ठ- ८५।

रखने के लिए वह अनेक यत्नों से उसकी शुश्रूषा करता है। पुष्टि-मार्ग में 'सेवा-विधान' इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

सेवा-विधान :-

गोस्वामी हरिराय जी के अनुसार सेवा दो प्रकार की होती है, एक सेवा सर्वत्याग के साथ, दूसरी अनासक्त भाव रखते हुए अत्याग से। दूसरी के अनुसार भक्त धर्मानुसार ग्रहस्थाश्रम का पालन करते हुए तथा ग्रहस्थ में अनासक्त रहते हुए कृष्ण-सेवा करे।१ सर्वत्याग को विशेष महत्व देते हुए भी ग्रहस्थ में अनासक्ति को अधिक व्यवहारिक माना है। इस अर्थ में इन्होंने मात, पिता, बन्धु-बान्धवों के संबंधों को भी नकारा है।

सेवा के महत्व को अधिक प्रतिपादित करने के लिए इन आचार्यों ने अष्ट प्रहर की सेवा का संकेत किया है। जीवन के व्यावहारिक पक्ष में अपना अधिकांश समय एक ही विषय में निमग्न कर देने से व्यक्ति की विचार सरणियों में परिवर्तन आ जाता है। वह जिस जीवन को जीता है, उसे ही सोचता है, उसी का ध्यान धरता है और उसी के स्वप्न देखता है। अष्ट-प्रहर की सेवा के माध्यम से इन आचार्यों ने भक्त की भावनाओं को भगवत्सेवा में अभ्यस्त बनाने के लिए ही इस व्यवहारिक पक्ष को प्रस्तुत किया था, इसका आधार शास्त्र - सम्मत था,:-

'वेद में तथा श्री भागवत में आठ प्रकार की सेवा है। सो एकादस स्कंध में श्री भगवान् उद्धव जी प्रति कहे हैं। सो अष्ट प्रहर की सेवा करें'।२

कर्म-प्रधान :-

अष्ट प्रहर की इस सेवा में मग्न करके इन आचार्यों ने व्यक्ति

---

(१) तुलनीय-- 'स्वमार्गीय शरण समर्पण सेवादि निरूपणम्' (भाग-१) पृ०७५ - हरिरायवाङ्मुक्तावलि,

(२) स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना, (प्रकाशित), पृष्ठ- २५।

को उसके कर्त्तव्यों के प्रति अकर्मण्य नहीं बनाया। । वरन् कर्मठता के लिए तो ये बार बार प्रोत्साहन देते रहे हैं। गोस्वामी हरिराय जी ने भी कर्म को प्रधान रूप में स्वीकार किया है। इन्हीं के शब्दों में, 'वैष्णव कौं महिनत करिके द्रव्य कमावनौ। महिनत को द्रव्य प्रभु अँगीकार करत हैं'।१ एक स्थान पर उन्होंने भाव-संसार में निमग्न भक्त के लिए निर्देश किया है कि उसे विवेक अवश्य रखना चाहिये, 'जीव कौं विवेक विचार करनौ'। २ इसी प्रसंग में वे कहते हैं, 'जीव कौं उद्यम अवश्य करनौ'।३

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य में भी कर्म की महत्ता प्रतिपादित की है :-

बोले हरि सुनौ तात बात एक मेरी।
करम बस सबै जु होत मिलि सुभाव हेरी।
कृत के आधीन दैव, कहौ कहा करि हैं।
मन की कछु चलत नाँहि, करम विनु न सरि हैं।४

सिद्धान्त पक्ष में कर्म की महत्ता अवश्य प्रतिपादित की गई, किन्तु अष्टप्रहर सेवा-विधान की भावना ने कुछ वैष्णवों को लौकिक परिस्थितियों में अकर्मण्य बना दिया था। --'रामदास जी अष्ट प्रहर अपरस में रहते। --- यह कहि यह जताये जो लौकिक काहू सौं बोलति नाहिं। व्यौहार, बनिज कछू न करते, स्त्री सँग हू छीहे'।५

सेवामें भाव प्रवणता होने के कारण विवेक का अधिक महत्व नहीं। विवेक तो वस्तुत: गुरू के लिए आवश्यक है। गुरू स्वंय अपने अध्ययन मनन के निष्कर्ष से अनुयायियों को भाव - सरिता में निमग्न होने के लिए निर्देश देता है। इस

---

(१) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता- भाग-२ पृष्ठ- २८५,
(२) पुष्टि दृढ़ाव - पृष्ठ- १,
(३) वही।
(४) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य - प्रकाशित, पद सँ० - १११,
(५) प्राचीन वार्ता रहस्य-भाग-३, सम्पा० पो० कण्ठमणिशास्त्री, कांकरौली, द्वितीय संस्करण, पृ० २८।

अवसर पर अनुयायी भक्त का विवेक उसका पवित्र भावोद्वेग में बह जाना ही है। तर्क-वितर्क से परे शुद्ध भावात्मक - संसार में विचरण करना ही उसका कर्तव्य है, फिर भी गुरू उसे अपना विवेक जागृत रखने के लिये सदैव प्रेरित करते रहते हैं।

पुष्टि मार्ग की आराधना के मार्ग में तीन सोपान निहित हैं, भक्त, गुरू तथा हरि। हरि का स्थान सर्वोपरि है, किन्तु गुरू को भक्त एवं भगवान के बीच की कड़ी माना गया है। गुरू के द्वारा ही भक्त भगवान की कृपा का पात्र बनता है। गुरू ही भक्त को कृष्ण की लीलाओं को अनुभव करने के लिये सक्षम बनाता है।

गुरू :- पुष्टि मार्ग में गुरू और गोविन्द में अन्तर नहीं समझा जाता। एक स्थान पर शंका का निवारण करते हुए गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा है, 'सो कौन से स्वरूप को भजिये। ता ऊपर कहत हैं, श्री वल्लभ कुल सब पुरुषोत्तम स्वरूप हैं।१' पुष्टि मार्ग में गुरू की तीन विशेषतायें बतलायी गयीं हैं, - आचार्य भाव, भक्तभाव तथा ईश्वर भाव।

आचार्य भाव से गुरू मार्ग के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करते हैं, उपदेश, प्रवचन आदि के द्वारा मनुष्य को सत्य का बोध कराते हैं, तथा प्राणी को शरण में लेकर सेवा में संलग्न करते हैं।--

मार्ग-प्रतिपालक -- करि करुना श्री गोकुल प्रगटे, सुख दान दिवायो है,
पुष्टि पंथ मरजादा थापन, आपु तें आयों हैं ।।२
वेद मर्यादा पालक -- श्री हरि वदन जो प्रगट न होते, तौ बूढ़त वेद जहाज।३
शरण देने वाले -- सकल शास्त्र श्रुति स्मृतिगन मथिकैं, किय विरोध कौं भंग।४

---

(१) पुष्टि दृढ़ाव, गोस्वामी हरिराय जी, (प्रकाशित), पृष्ठ-१०
(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित), पद- ६०५
(३) वही, पद सं० ५८६
(४) वही।

सेवाज्ञान कराने वाले- प्रेम सहित ब्रजनन की सेवा सिखवत् आप बताई ।१

भक्तभाव से इन आचार्यों ने अपने सेव्य स्वरूपों की विविध भाँति से सेवा की है । भगवान् के सामीप्य का अनुभव कर आनन्द प्राप्त किया है । ये वैष्णवों का सत्संग भी करते हैं और उनकी महिमा भी गाते हैं ।

- जनम पदारथ बह्यौ जात री ।
  सुमिरन भजन करौ केसव कौ, जब लग ये नहिं गरत गातरी ।
  ये संगी सब चारि दिवस के, धन, दारा, सुत, पिता, मात री ।
  - - - - - - - - - - ।
  `रसिक` कहत तू सर्व छाँड़ि कैं, गुन गोपाल के क्यों न गात री ।।२
  (भक्त भावना)

- यह विधि नित नौतन सुख मोकौं, बल्लभ लाड़ लड़ावै ।
  मैं जानूं कै वल्लभ जानै, कै निज जन मन भावै ।।३
  (सेवा)

- देखौ स्वाद हमारे रस कौ, जो नहिं कहत पतीजै ।
  `रसिक प्रीतम` नित प्रति ऐसैं ही, मिलिकै अति सुख कीजै ।।४
  (सामीप्यानन्द)

- हौं बारी इन वल्लभियन पर ।
  मेरे तन कौ करौ बिछौना, सीस धरौं इन चरननि तर ।।५
  (वैष्णव-महिमा बखान)

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५८६ ।
(२) वही, पद संख्या- ६६८ ।
(३) वही, पद संख्या- ५११ ।
(४) वही, पद संख्या- ८० ।
(५) वही, पद संख्या- ६४२ ।

ईश्वरत्व कोटि को प्राप्त हुए ये आचार्य अपने वैष्णवों द्वारा भेंट स्वीकार करते हैं, उन्हें मोक्ष प्राप्ति के लिए योग्य बनाते हैं तथा उन पर कृपा-वृष्टि करते रहते हैं ।

आचार्य वल्लभ को कृष्ण का मुखावतार माना गया है। इस प्रसंग में उनको अग्नि रूप में भी स्वीकारा गया है ।-

या संसार अनल के जर ते, श्रीमुख अनल विचारी ।।१

गोस्वामी हरिराय जी ने वल्लभाचार्य की बधाई तथा उनके आश्रय के पदों में अपनी भक्ति भावना को बड़े ही दैन्य रूप में प्रस्तुत किया है । कृष्ण की तरह उन्होंने वल्लभाचार्य की भी महिमा का बखान किया है :-

-- श्री वल्लभ सदा बसौ मन मेरे ।२
-- जिन्ह श्री वल्लभ रूप न जान्यौ ।३
-- श्री वल्लभ श्री वल्लभ, प्रभु मेरे स्वामी ।४
-- श्री वल्लभ महा सिंधु - समान ।५
-- श्री वल्लभ मुख कमल की, हौं वलि वलि जाऊँ ।६

वैष्णव :- गुरू की महिमा में खोये हुए भक्त, जिन्हें सम्प्रदाय में वैष्णव कहा जाता है, गुरू में अनन्यता का भाव रखते हैं । अन्य के प्रति लगाव ही उनका सर्वोपरि अपराध है :-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५५५ ।
(२) वही, पद संख्या- ५६५ ।
(३) वही, पद संख्या- ५६४ ।
(४) वही, पद संख्या- ५६२ ।
(५) वही, पद संख्या- ५५४ ।
(६) वही, पद संख्या- ५५३ ।

अन्याश्रय:- `वैष्णव कौं अन्याश्रय होनौं नहीं । और अन्याश्रय करैं तौ विमुख जानिये । ताते अन्याश्रय सर्वथा न करनौ । और अन्यसमर्पित लेय तो दुर्बुद्धि आवै । श्री जी हृदय में न पधारैं । ताते प्रथम अपनौ हृदय शुद्ध करिये । तब हृदय की आँखिन सौं देखिये ।`१

मनशुद्धि:- वैष्णव को शुद्ध मन से एक निष्ठ होकर गुरू की आज्ञा माननी चाहिए । मन-शुद्धि पर बल देते हुए गोस्वामी हरिराय जी लिखते हैं :- `संगति के बस मन है । मन के बस देह है ज्यौं चलावै त्यौं ही चलै । ज्यौं बुलावै त्यौं ही बोलै । हाथ पाव मन के दास है । ज्यौं कहैं त्यौं ही करैं हैं । परि बचन फेरै नहीं । देह को राजा सो मन है । राजा सौं ऊच्च संगति होय तो राज बढ़ै और नीच संगति होय तो राज जाय । ताते मन कौं ऊँची संगति मिलावनौ वैष्णव को पहलौ धर्म है ।`२

`अनन्यता`:- अनन्यता को विशेष लक्ष्य करते हुए उन्होंने लिखा है,--`जाकौं स्वरूप ऊपर अनन्यता उपजै वो वैष्णव`।३ वैष्णव वर्ग में ऊँच-नीच का भेद नहीं रहता, इसमें जाति-पाँति का विचार भी नहीं किया जाता, `भगवदीय वैष्णव में जाति बुद्धि सर्वथा नाहीं करनी`।४` यदि मनुष्य में ऊँच-नीच का विचार है भी तो वह कर्मों के द्वारा ही है । पुष्टि-मार्ग में व्यक्ति का अभिमान और विनम्रता ही उसके नीच-ऊँच को स्पष्ट करते हैं,`एक तौ जीव में अभिमान है । सो तौ चाण्डाल है ।५

---

(१) पुष्टि दृढ़ाव, प्रका० बजरंग पुस्तकालय, मथुरा, पृष्ठ- ५ ।
(२) वही, पृष्ठ-२ ।
(३) वही, पृष्ठ-१ ।
(४) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-२) पृष्ठ- ३६७ ।
(५) पुष्टि दृढ़ाव, प्रका० बजरंग पुस्तकालय, मथुरा , पृष्ठ- ६ ।

वैष्णवों के कर्त्तव्यों का संकेत करते हुए गोस्वामी हरिराय जी लिखते हैं, 'एक तो चिन्ता न करैं। दूसरे असमर्पित न खाय। तीसरे विषय में ली-न न होइ। चौथे जो कछु होय सो भगवद इच्छा करि मानैं। पांचमे अभिमान न करै। छटे तो वैष्णवन के दासन को दास व्है रहै। सातवे तो भगवत् गुणगान करै। आठवे तो मन में प्रसन्न रहै। नवमे तो भगवदीय वैष्णवन देखिकैं मन प्रफुल्लित होय। दसवें तो लौकिक संग छोड़ि वैष्णवन को संग करै। ऐसो भगवदीय होइ तापर भर भाव घणों राखिये। वैष्णव के मन की बात जाननी। बाकी देखा देखी न करनी।'१

अनुग्रह :- वैष्णव भगवद् लीला का अनुभव भगवान के अनुग्रह से ही करता है। भगवान् की कृपा बिना वह न तो मन को शुद्ध ही रख सकता है और न ही सेवा में स्वयं को संलग्न कर सकता है। भगवान् का अनुग्रह ही सब कुछ है। अनुग्रह का महत्व प्रतिपादित करते हुए गो० हरिराय जी ने लिखा है :-

-- तिहारी कृपा कटाक्ष वृष्टि ते, होत है हरि आसक्ति ।२

उनके अनुसार, पुष्टि मार्ग में प्रभुन को अनुग्रह ही नियामक है।३ अनुग्रह में आत्मीयता का बोध है, जब आत्मीयता प्रकट होती है, तभी वह नियामक अनुग्रह करके ही जीव को आज्ञा प्रदान करता है। इस आज्ञा में जीव की सद्गति का संकेत निहित रहता है। "काहू के द्वारा जब विशेष आज्ञा होइ तो परम अनुग्रह जाननो'।४ भगवान् की कृपा बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। अत: भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए उसकी अष्ट प्रहरी सेवा, भजन-कीर्तन आदि का विधान रक्खा गया है।

---

(१) पुष्टि दृढ़ाव, प्रका० बजरंग पुस्तकालय, मथुरा। पृष्ठ- ६।
(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५६५।
(३) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-१) पृष्ठ- ५०३।
(४) वही, पृष्ठ- संख्या- ५४०।

गुरू प्राणी को ब्रह्म का तादात्म्य कराने के लिए नाम श्रवण, ब्रह्म सम्बन्ध का विधान अपनाते हैं। भगवत् प्राप्ति भगवान् के अनुग्रह से संभव होने के कारण शरणागति को आवश्यक माना गया है। शरण में आने के लिए पहले गुरू को प्रसन्न करना पड़ता है। गुरू 'नाम मंत्र' तथा 'निवेदन', दो विधानों से भक्त को शरण देते हैं। नाम मंत्र में वैष्णव को गुरु अष्टाक्षर मंत्र, 'श्रीकृष्ण: शरणं मम' के द्वारा सम्प्रदाय में प्रविष्ट करते हैं। उसे कृष्ण के प्रति लगाव की प्रथम स्थिति में लाते हैं। ये आचार्यगण वैष्णव को अष्टाक्षर मंत्र का नाम - जाप करने का प्रथम आदेश देते हैं :-

- पढ़ौ सार वल्लभ बचनामृत। अष्टाक्षरहिं जपौ करि नेम ।१

अष्टाक्षर नाम-श्रवण के पश्चात् गुरू शिष्य को ब्रह्म संबंध की दीक्षा देते हैं, इसमें प्राणी अपने सभी लौकिक संबंधों सहित गुरू की साक्षी में कृष्ण के चरणों में स्वयं को समर्पित कर देता है। आचार्य को इस प्रकार के ब्रह्म संबंध की दीक्षा देने का आदेश नियामक शक्ति द्वारा ही दिया गया है :-

- आज्ञा भई बल्लभहिं, ब्रह्म संबंध तुम जु करावहु।
सकल दुष्कृत दूरि करि, सेवा-प्रयत्न जतावहु ।।२

गो० हरिराय जी ने अन्यत्र कहा है,- (श्रीनाथ जी ने गुसाईं जी से यह बात कही थी कि) 'जा जीवकौं तुम ब्रह्म संबंध करावोगे तिनसों हौं बोलूंगो, तिनही के अंग सों अपनो अंग स्पर्श करूंगो। तिनही के हाथ को आरोगूंगो। ये तीन वस्तु तिहारे संबंध बिना काहू कौं सिद्ध न होगी'।३

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५८७ ।

(२) वही, पद संख्या- ५२३ ।

(३) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-३), पृष्ठ- ३०२ ।

ब्रह्म संबंध के पश्चात् भक्त अहमन्यता वा अभिमान का पूर्णत: परित्याग कर अत्यन्त दैन्यभाव से प्रभु के सम्मुख प्रस्तुत होता है। दैन्य के द्वारा प्रभु की महत्ता का पूर्ण प्रसारण किया जा सकता है। इसलिए दैन्य को इस मार्ग में महत्ता दी गई है।

दैन्य :- गो० हरिराय जी ने अपने प्रभु की विनय के प्रसंग में स्वयं को अति दैन्य रूप में प्रस्तुत किया है। प्रभु के विरह में उनका हृदय द्रवीभूत हो उठता है,-

अहो हरि दीन के जु दयाल ।
कब देखोगे दसा हमारी , ग्रसति है कलि - काल ।१

दैन्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा है, निरंतर अपनो दोष विचारनो ताते दीनता सिद्ध होय।२ वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों ने सेवा-व्यवस्था में कीर्तन, भजन, भगवत्गुणगान आदि सभी का विधान भक्त के दैन्य को व्यक्त करने के लिए ही लिखा है।

कीर्तन एवं भजन को इस मार्ग में अधिक प्रोत्साहन दिया गया है। वल्लभाचार्य जी ने पुष्टि-मार्ग में भक्ति की जिस पावन धारा को प्रवाहित किया, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उसे कर्म-मार्ग की ओर मोड़ दिया। आ० विट्ठलनाथ जी के वंशानुयायी आचार्यों ने अपने पूर्वजों के आदेशानुसार भक्ति में भाव और कर्म का सामन्जस्य कर इसे सिद्धान्त का रूप दे दिया। गोस्वामी हरिराय जी को इस श्रृंखला की मुख्य कड़ी माना जा सकता है। कीर्तन को अष्ट झाँकियों के अनुसार निरूपित कर भगवत्गुणगान को एक

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६५४ ।
(२) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-१) पृष्ठ- ३७८ ।

वैधानिक रूप दे दिया गया । अष्ट झाँकियों के विविध कीर्तनों से संगीत, साहित्य व सिद्धान्त का पर्याप्त प्रसार हुआ, कालान्तर में इसे एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक देन के रूप में स्वीकार किया गया । कीर्तन विधान के अन्तर्गत अष्टछाप के कवियों की प्रतिष्ठा का इन पुष्टि-मार्गीय आचार्यों ने साम्प्रदायिक भावना का जन-प्रांगण में प्रसार किया तथा दूसरे रूप में ब्रजभाषा काव्य के लिए समृद्धि के द्वार खोल दिए ।

गोस्वामी हरिराय जी ने इस कीर्तन परम्परा के वैधानिक रूप को स्वीकारते हुए लिखा है,-

'मधुर विधान अष्ट के कीर्तन, बस भये गोकुल के भूप' ।१

भगवत् गुणगान में जहाँ इन आचार्यों ने कृष्ण के रस रूप को स्वीकार किया है, वहाँ विषय वासना का उन्होंने स्पष्ट विरोध किया है ।--

निहचैं करि मानो यहि मन में नाहिंन मोसों सेवा चोर ।
बिसै वासना रहत निरंतर करत विचार यहै निसि भोर ।।२

विषय वासना को उन्होंने भक्ति के मार्ग में एक रोढ़ा माना है ।--

इन्द्रिय विषय परायन होलै, मूरख जनम गँवायौ ।
भक्त जनन के संग बैठिकैं, थिर नहीं मन अटकायौ ।।३

मृत्यूपरान्त नरक-स्वर्ग की व्यवस्था का भी उन्होंने समर्थन किया है,- जीवत प्रेत, अंत नरकन में, जम की मार परी ।४ तथापि गो-लोक धाम को सर्वोपरि माना है, जहाँ श्रीकृष्ण सदैव आनन्द-क्रीड़ा में मग्न रहा करते हैं । वर्ण के व्यावहारिक पक्ष में उन्होंने विप्र-धेनु को भी पर्याप्त महत्व दिया है ।५

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५८९ ।
(२) वही, पद संख्या- ६६३ ।
(३) वही, पद संख्या- ६६८ ।
(४) वही, पद संख्या- ६६७ ।
(५) वही, पद संख्या- १११ ।

वैष्णव तथा आचार्यों के लिए तिलक मुद्रा आदि अंकित करने का भी विधान है।१ किन्तु इसे विशेष महत्व नहीं दिया गया है, यदि समय हो तो तिलक मुद्रादि अंकित करे। तात्पर्य यही है कि इस सम्प्रदाय में किसी भी प्रदर्शन वृत्ति को महत्व न देकर भावात्मक निष्ठा का ही विशेष महत्व प्रतिपादित किया गया है। सेवा, कीर्तन, नामश्रवण आदि सभी में भावात्मक आवेश का उत्कर्ष ही सर्वोपरि माना गया है। इस भावात्मक उद्वेग के लिए कृष्ण की लीला का बखान करना, भगवत् वार्ता में रुचि लेना, सत्संग करना आदि कर्त्तव्यों को महत्ता दी गई है।

अन्त में पुष्टि-मार्गीय स्वरूप का स्पष्टीकरण गोस्वामी हरिराय जी ने इस प्रकार किया है,- 'जिस मार्ग में लौकिक सकाम तथा निष्काम सब साधनों का अभाव है। जहाँ श्रीकृष्ण की स्वरूप प्राप्ति ही साधना और साध्य दोनों हैं। उसे पुष्टि-मार्ग कहते हैं। जहाँ देह के अनेक सम्बन्ध भगवान् की इच्छा पर छोड़ दिए जाते हैं, जिस मार्ग में भगवद् विरह की अवस्था में भगवान् की लीला के अनुभव मात्र से संयोगावस्था का सुखानुभाव होता है, और जिस मार्ग में सब भावों में लौकिक विषयों का त्याग है और इन भावों के सहित देहादि का भगवान को समर्पण हो, वह मार्ग पुष्टि-मार्ग कह लाता है। २

गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य से प्रतिबिम्बित पुष्टि-मार्गीय भक्ति-सिद्धान्त के स्वरूप को देखते हुए सारांश रूप में कहा जा सकता है कि पुष्टि-मार्गीय भक्ति विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से अनुगृहीत है। इस मार्ग में कृष्ण के माहात्म्य का गान करते रहना ही भक्त का सर्वोपरि कर्त्तव्य है। नवधा भक्ति से युक्त प्रेमाभक्ति को इसमें अपनाया गया है। इसमें कृष्ण के साकार-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६४३।
(२) 'पुष्टि मार्ग निरूपणम्'- संस्कृत ग्रन्थ, गो० हरिराय जी कृत।

स्वरूप की सेवा का विधान है। कृष्ण की लीलाओं का अनुभव करना ही भक्त का अभीष्ट है। साधन बल से सर्वथा रहित यह मार्ग भाव-प्रावल्य पर ही आधारित है। भक्तों ने अपने आराध्य के अधिक निकट पहुँचने के लिए गोपीभाव को अधिक महत्ता दी है। कहीं-कहीं ब्रजजन के भाव को भी स्वीकार किया गया है। श्रीनाथ जी पुष्टिमार्ग के प्रमुख सेव्य-स्वरूप हैं। कृष्ण का लीलात्मक स्वरूप पूर्ण रस से आप्लावित है, जिसका माधुर्य भक्त के रोम-रोम में व्याप्त होता रहा है। अपने प्रभु को प्रसन्न रखने के लिये आचार्यों ने प्रभु की सेवा को वैधानिक रूप दिया है।

गुरू को भगवान से भी बढ़ कर महत्ता दी गई है। गुरू में तीन भावों का समावेश पाया जाता है, आचार्य भाव, भक्तभाव एवं ईश्वरभाव।

वैष्णवों के प्रति इस मार्ग के आचार्यों ने सम्मान प्रकट किया है। वैष्णवों को अन्याश्रय व अन्य समर्पित वस्तु से बचना चाहिए। मन को शुद्ध रख कर भगवान् में अनन्य भाव रखना उसका प्रमुख कर्त्तव्य है। भगवान् का अनुग्रह ही इसमें सबसे महान वस्तु है, जिसे प्राप्त करने के लिए शुद्ध हृदय की आवश्यकता है, किसी साधन-विशेष की नहीं। भगवान् की महत्ता का अनुभव करने के लिए आवश्यक है कि स्वयं के हृदय में दैन्य भाव का समावेश हो। विषय वासना से सर्वथा परे यह मार्ग शुद्ध भावोद्वेग को ही महत्व देता है।

गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य से प्रतिध्वनित भक्ति-सिद्धान्त का जो स्वरूप दृष्टिगत हुआ है, वह पुष्टि-मार्ग के सिद्धान्तों को पूर्णत: विवेचित करता है। गोस्वामी हरिराय जी के पूर्ववर्ती सन्त कवियों के काव्य में भी, आंशिक विषमता रहते हुए, कुछ इसी प्रकार के विचार समाविष्ट हैं। गोस्वामी हरिराय जी का साहित्य इस दृष्टि से सन्त काव्य के अधिक निकट जान पड़ता है। दोनों पक्षों की कुछ समान मान्यताएं द्रष्टव्य हैं :-

दोनों ही पक्ष संसार के प्रति विरक्ति भाव रखते हैं। कबीरदास जी के अनुसार 'रहना नहिं देश विराना है, यह संसार कागद की पुड़िया बूंद पड़ी घुल जाना है।' गोस्वामी हरिराय जी के विचारों में भी 'ये संगी सब चारि दिना के, धन, दारा, सुत, पिता, मात री'। दोनों ही पक्ष गुरु को इष्ट से भी अधिक महत्व देते आए हैं। जहाँ संतों के अनुसार 'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाइ, बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो बताइ'। वहाँ गोस्वामी हरिराय जी ने भी इसी तथ्य को स्वीकार किया है,-- जो श्री वल्लभ चरन गहै, तो मन वृथा करत क्यों चिन्ता हरि हिय आय रहैं। गोस्वामी हरिराय जी ने निष्काम - भक्ति को ही अभीष्ट समझा है, तो संतों के विचार में भी इष्ट का बिना किसी कामना के स्मरण करना चाहिये। सत्संग, भजन, कीर्तन, नाम महत्ता तथा हरि गुण-गान को उभय पक्ष स्वीकार करते हैं। भक्त और भगवान् के बीच में प्रिय-प्रिया का सम्बन्ध दोनों ही विचारकों ने अपनाया है, अन्तर केवल इतना है कि संतों ने स्वयं को भगवान् की पतिव्रता परिणीता-गृहणी स्वीकार किया है,- हरि मोर पिउ मैं हरि की बहुरिया'। गोस्वामी हरिराय जी ने इससे किंचित पृथक् परकीया-प्रणय को प्रधानता दी है। सूफीमत में इससे सर्वथा इतर मान्यता है, वे आराध्य को प्रिया और स्वयं को प्रिय मानते हैं।

संत एवं गोस्वामी हरिराय जी, उभय पक्ष को विरहानुभूति पीड़ित करती है। गोस्वामी हरिराय जी ने विरह की प्रगाढ़-पीड़ा को अन्तर्हित करके ही प्रिय के ध्यान में निमग्न रहने को प्रणय का आदर्श समझा है। -'भगवान् के विरह का रस मिलन के आनन्द से कुछ कम सुखकर नहीं है। सगुण-भक्तों और निर्गुण सन्तों ने समान रूप से प्रभु के विरह की अनुभूति में अपनी आत्मा को उज्ज्वल किया है। विरह प्रेम की जाग्रत अवस्था का नाम है - - - - विरह की यह ज्वाला ही भक्तों का अमृत-पान है।'१ सन्त कवियों में विरह वेदन सहने की

---

(१) सन्त साहित्य और साधना- डा० भुवनेश्वर मिश्र, 'माधव', (प्रथम-संस्करण) पृष्ठ- १४ ।

क्षमता, सगुण-भक्त कवियों की अपेक्षा कम है। विरह के एक ही आघात में उनका हृदय विचलित हो उठता है,- "कै विरहिन कौं मीच दै, कै आपा दिखलाय। आठ पहर का दाझना मो पै सहा न जाय।"

संत कवियों ने ब्रह्म को निर्गुण तथा निराकार स्वीकार किया है, किन्तु उन्होंने राम-कृष्ण के साकार स्वरूप से कभी विद्वेष नहीं किया, इसी प्रकार पुष्टि-मार्ग के आचार्यों ने भी ब्रह्म को प्राकृत-गुणों से हीन तथा दिव्य गुणों से सम्पन्न होने के कारण इसे निराकार व साकार दोनों पक्षों में समाविष्ट समझा है। "वस्तुत: भक्त कहिये या सन्त निर्गुनी कहिये या सगुनी, परमात्मा में अनन्य और निष्काम भक्ति तथा उस भक्ति के आवश्यक परिमाण-स्वरूप समस्त प्राणियों में एवं सुख-दुख, हानि-लाभ, शत्रु-मित्र, मान-अपमान में समभाव ही उसके मुख्य लक्षण हैं।"१

व्यावहारिक दृष्टि से सगुण और निर्गुण भक्तों में उपास्य और उपासना की दृष्टि से अन्तर अवश्य है। निर्गुण सन्तों ने सगुण भक्तों की तरह प्रतिमा-पूजन, सेवा आदि का विधान स्वीकार नहीं किया, वे किसी भी प्रकार की मूर्त्ति पूजा के पक्ष में नहीं रहे, जबकि सगुण भक्तों का आधार स्तम्भ ही मूर्त्ति पूजा है। यही कारण है कि निर्गुण सन्तों ने कर्म को महत्ता दी और सगुण भक्तों ने भक्ति-भाव को। एक पक्ष ने साधन-बल को अवलम्ब बनाया तो दूसरे ने साधन का सर्वथा विरोध किया। सन्तों में वैराग्य की भावना प्रबल है तो सगुण भक्तों में गृहस्थ-जीवन के पवित्र वातावरण की। मुख्य रूप से देखा जाय तो निर्गुण सन्तों और सगुण भक्तों में व्यवहारगत विषमता ही प्रधान है, इसमें साधन बल, पूजा-अर्चा, विरक्ति आदि कुछ ही विषयों में मत-भेद है, अन्यथा सिद्धान्त पक्ष में पर्याप्त समानता है, यह गोस्वामी हरिराय जी तथा सन्त कबीर के काव्य से जाना जा सकता है।

गोस्वामी हरिराय जी के भक्ति-सिद्धान्तों का विवेचन कर लेने के पश्चात् उनके दार्शनिक विचारों पर भी संक्षिप्त

---

(१) हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास- चतुर्थ-भाग, (भक्ति-काल), निर्गुणभक्ति, सम्पा० पं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ६८।

रूप से प्रकाश डालना अपेक्षित है। पूर्ववर्ती विवेचन में कहा जा चुका है कि गोस्वामी हरिराय जी ने पुष्टि-मार्ग के दार्शनिक विचारों को अपने संस्कृत ग्रन्थों में अधिक स्पष्ट एवं विस्तार से व्यक्त किया है, तथापि उनके ब्रजभाषा साहित्य में भी उनके दार्शनिक विचारों का यत्र-तत्र आभास होता है।

-०::-दर्शन-::०-

दर्शन के क्षेत्र में गोस्वामी हरिराय जी की कोई नई मान्यता नहीं थी। अपने पूर्वजों द्वारा प्रणीत शुद्धाद्वैत सिद्धान्त को ही उन्होंने पुष्ट किया है, और उसी का बहुमुखी प्रसारण भी। ``पुष्टि-मार्गीय सम्प्रदाय के ज्ञान एवं भक्ति दो पक्ष हैं। इसका ज्ञान-पक्ष `शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद` है, और भक्ति पक्ष `स्वतंत्र निर्गुण भक्ति`। वल्लभाचार्य जी ने इस निर्गुण स्वतंत्र भक्ति को जीव के अधिकारानुसार त्रिविध रूपों में फलित किया है, इसके तीन रूप पुष्टिप्रवाह, पुष्टिमर्यादा एवं पुष्टि-पुष्टि मिश्र रूप हैं``।१

पुष्टि-मार्गीय दार्शनिक सिद्धान्तों को गोस्वामी हरिराय जी ने बड़े ही सहज ढंग से अपने काव्य में व्यक्त किया है। संक्षेप में उनके दार्शनिक मत इस प्रकार हैं :-

-०::- शुद्धाद्वैत -::०-

शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित `अद्वैत वाद` को उन्होंने स्वीकार किया है, किन्तु भक्ति के व्यावहारिक पक्ष की स्थापना के लिये, उन्होंने इस निर्गुण निराकार को ही साकार स्वरूप में स्वीकारा है। उनकी मान्यताओं के अनुसार ब्रह्म निराकार व निर्गुण होते हुए भी भक्तों के लिए अपनी लीला प्रदर्शित करने के लिए साकार स्वरूप ग्रहण करता है। इस मान्यतानुसार इस मार्ग के दार्शनिक पक्ष को शुद्धाद्वैत भी कहा जाता है। `अद्वैत` को स्वीकार करते हुए गो० हरिराय जी ने लिखा है `:-

---

(१) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, सम्पा० श्री द्वारकादास परिख, (भाग-३) -प्रथम संस्करण, पृष्ठ- २१।

-- एक रूप बहु रूप परस्पर, बरनौ कहा देख मन लाजत ।१

एक में अनेकत्व को स्वीकारते हुए उन्होंने अनेक में एकत्व को भी स्वीकारा है :-

-- एक होइ सो द्वै क्यों लखियत, सोहत रूप अनेक ।
मतिहारी सोचत सुन सजनी, छिप्यौ एक में एक ।
एक मूल द्वै पात एक द्रुम 'रसिक' प्रीतम रस टेक ।।२

एक से अनेकत्व में व्याप्त होना उस ब्रह्म की इच्छा-शक्ति पर निर्भर है । एक में अनेक की प्रतिष्ठा शास्त्र सम्मत है,- 'उसने चाहा कि वह अनेक रूप ले ले'।३ यह उसकी इच्छा का परिणाम ही है ।

पुष्टि-मार्ग में ब्रह्म को 'विरुद्ध धर्माश्रयता' से सम्पन्न माना गया है ।

-::ब्रह्म::- वह एक होते हुए भी अनेक है, व्यापक होते हुए भी परमाणु है तथा परमाणु होते हुए भी व्यापक है । वह सर्वत्र विद्यमान है । वह आवश्यकता के अनुसार 'भूतल भारि उतारि हौं धरि हौं रूप अनेक,'४ उसकी इच्छा-शक्ति पर ही निर्भर है । उसकी शक्ति का ब्रह्मा, शिव, शेष भी पार नहीं पा सकते ।५

जगत को ईश्वर का भौतिक अंश माना गया है । जगत

'उसने स्वयं को जगत के रूप में ढाल लिया'। ६ ।

गोस्वामी हरिराय जी ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है :-

ब्रज बृन्दावन गिरि नदी, पसु पंछी सब संग ।
इनसो कहा दुराइवौ, प्यारी राधा मेरौ अंग ।।७

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ४१६ ।
(२) वही, पद संख्या- १३६ ।
(३) 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय'- छान्दो, उ० ६।२।३।
(४) सनेह लीला ।
(५) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६३० ।
(६) 'स आत्मानं स्वयमकुरुत' - तै० उ० २।७।
(७) दान लीला ।

'सर्वम् खलु इदं ब्रह्म' को इस मार्ग में भी स्वीकार किया गया है। संसार के अंधकार में यह 'ज्योति-पुंज' सत् का उद्बोधक है,:-

-अँधियारे में धरयौ प्रकासै, अँगदीप प्रगटाय ।।१

इस प्रकार जगत, ब्रह्म का क्रीड़ामाँड होने के कारण सत्य है। वह ब्रह्म का ही एक स्वरूप है।

-:: माया ::-

माया ब्रह्म का ही एक साधारण सामर्थ्य है। माया के द्वारा ही प्रभु अपनी अनन्त लीलाओं को प्रदर्शित करते रहते हैं। माया के लौकिक अर्थ में सुत,दारा,माता, पिता, लेन-देन सब मिथ्या है। इसमें कृष्ण की रसमयी लीलाएं हीं सत्य हैं :-

सनेही साँचे नन्द कुमार ।
और नहीं कोई दु:ख की बेली, सब मतलब के यार ।
मनुष जाति को नाँहि भरोसौ, छिन बिहार छिन पार ।
चित्त बचन को नहीं ठिकानौ, छिन-छिन पलट विचार ।
माता, पिता भगिनी सुत दारा, रति न निभत एक तार ।
सदा एक रस तुमहि निभावौ, 'रसिक प्रीतम' प्रतिपार ।।२

माया और अविद्या दो पृथक् वस्तु हैं। अविद्या को उन्होंने भगवत् भक्ति में बाधक माना है :-

या संसार अनल के जर तैं, श्री मुख अनल विचारि ।
विसम विषय जल में बूढ़त हौ, कर गहि लेहु उछारि ।
लगी डाँकिनी बड़ी अविद्या, को सकै ताहि उतारि ।।३

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३८ ।
(२) वही, पद संख्या- ६५६ ।
(३) वही।

ब्रह्म, जगत, माया के समष्टि-स्वरूप की व्याख्या करते हुए, सम्प्रदाय के विद्वान लेखक गोस्वामी ब्रजभूषन लाल जी महाराज लिखते हैं, 'श्रीकृष्ण स्वयं लीला नायक, लीला रसिक, 'रसेश' हैं। वात्सल्य, सख्य और श्रृंगार की रस त्रिपुटी उनकी लीला की प्राण-स्फूर्ति है। राधा उनकी आदि प्रेरक शक्ति हैं। लीला-नायिका हैं। गोपांगनाएं उनकी रस मिलन की माध्यम, प्रेरक। प्रेम लक्षणा भक्ति का अविचल भाव ही गोपीभाव है और उसका चरमोत्कर्ष ही राधा-भाव है। ब्रज-गोष्ठ स्थित वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन ही इस सम्पूर्ण लीला-नाट्य - - - - - प्रकृति- पुरुष के रस मिलन, नित्य विहार की रंग-भूमि है। '१ इन्हीं के मतानुसार, 'प्रकृति -पुरुष के संयोग से आविर्भूत यह विश्व-ब्रह्माण्ड उस सच्चिदानन्दमय ब्रह्म स्वरूप का क्रीड़ा-भाण्ड है। 'एकोऽहं बहुस्याम' की मुक्त प्रेरणा से ही इस विशाल सृष्टि के साथ जीव जगत को उद्भव मिला, जिसमें मानव, पशु, पंछी, पर्वत, सरिता, वन- उपवन आदि का सहज समावेश है।'२

जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों में कहा जा चुका है, आध्यात्मिक दर्शन के क्षेत्र में गोस्वामी हरिराय जी की कोई नवीन मान्यताएं नहीं थीं, वरन् उन्होंने बड़ी ही निष्ठा से और कर्मठता से अपने पूर्वज-आचार्यों द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैतवाद का व्यापक प्रसार किया, उसे साधारण अनपढ़ व्यक्ति के लिए भी सहज बनाने का यत्न किया। इस प्रसंग में गोस्वामी हरिराय जी ने काव्य एवं संगीत का साहचर्य ग्रहण कर उसे अधिकहृदय ग्राही बना दिया है।

गोस्वामी हरिराय जी के सम्पूर्ण साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी का साहित्य उनकी साम्प्रदायिक सैद्धान्तिक मान्यताओं के प्रसारण हेतु ही रचा गया है।

(१-२) 'दान-लीला'- भाव विश्लेषण, प्रस्तावना, पृष्ठ-१।

> गोस्वामी हरिराय जी ने गद्य और पद्य दोनों रूपों में अपनी विचारधाराओं को अभिव्यक्ति दी है। एक धर्माचार्य ने अपने सिद्धान्तों को, अपनी दार्शनिक मान्यताओं को काव्य का आवरण प्रदान किया, जिससे वह सामान्य जनता के गले सहज रूप से उतर सकी। कहीं-कहीं ललित वार्ताओं के माध्यम से भी उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्त किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी हरिराय जी का साहित्य जहाँ भक्ति की मधुरिमा से मंडित है वहीं दर्शन की गरिमा से युक्त भी है।